International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 01-02-2021, Accepted: 05-03-2021, Published: 14-04-2021
Volume 3, Issue 2, 2021, Page No. 01-03

निर्गुण काव्य परम्परा में गुरु जम्भेश्वर का स्थान

ममता रानी
पी एच. डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब, भारत

सारांश
साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होने के साथ-साथ परिस्थितियों की उपज भी होता है। समाज में जिस प्रकार की स्थितियां उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार के साहित्य की रचना होती है। ईश्वर के सम्बन्ध में भी समाज में दो प्रकार के मत हमारे सामने आते हैं- प्रथम निर्गुण तथा दूसरा सगुण। वैदिक युग से लेकर समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ निरंतर परवर्तित होती रही। इन परिस्थितियों के अनुरूप ईश्वर के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों पर चिंतन-मनन होता रहा। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल (भक्तिकाल) तक भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित होती रही है परन्तु जैसे प्रत्येक व्यक्ति का किसी वस्तु को देखने का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न होता है, वैसे ही ईश्वर के सम्बन्ध में भी दृष्टिकोण में भेद दिखाई देने लगा। ब्रह्म के स्वरूप को लेकर निर्गुण-सगुण की चर्चा प्रायः होने लगी। कोई ब्रहम के निर्गुण रूप अर्थात जो न पैदा होता है न मरता है, की उपासना करने लगे तथा कोई सगुण अर्थात साकार, मूर्तिमान ईश्वर के उपासक बन गये। इन दोनों धाराओं का पूर्ण परिपाक भक्तिकाल में हुआ। वेदों में उस परब्रह्म की उपासना प्राकृतिक देवी-देवताओं के रूप में की जाती थी। उपनिषदों में ब्रह्म के विषय में चिंतन प्रारम्भ हुआ। श्वेताश्वेतारोपनिषद ने सर्वप्रथम ब्रह्म को निर्गुण की संज्ञा दी और उसे सर्वव्यापी एवं सर्वभूतात्मा में निवास करने वाला कहा है। आगे चलकर शन्कराचार्य ने निर्गुण शब्द का प्रयोग कई बार किया है। सिद्धों एवं नाथों की वाणी का मूल प्रतिपाद्य उस निर्गुण-निराकार परमात्मा की भक्ति करना था। रामानुजचार्य की शिष्य परम्परा में रामानंद जी हुए जिनके उदार व्यक्तित्व के कारण निर्गुण एवं सगुण दोनों धाराओं का विकास हुआ। हिंदी साहित्य के मध्यकाल तक समाज में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थी, जिनका निवारण करने के लिए संत-महापुरुषों ने साधारण लोगों को निर्गुण-निराकार परमात्मा की ओर उन्मुख किया। इन संतों ने अपने इष्ट को ही निर्गुण नहीं कहा अपितु अपने सैद्धान्तिक मत को भी निर्गुण नाम दे दिया। इन संतों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त आडम्बरों का खंडन करते हुए ब्रह्म के निर्गुण रूप की उपासना पर बल दिया। कबीर, गुरु नानक, गुरु जम्भेश्वर, दादू दयाल, सुंदर दास आदि संतों ने अपनी वाणी के द्वारा अज्ञानता के अंधकार में फसे लोगों का मार्गदर्शन किया। उत्तर भारत की धरती से दूर राजस्थान में गुरु जम्भेश्वर ने 'बिश्नोई' सम्प्रदाय की स्थापना करके बाह्यडम्बर में फसे तत्कालीन समाज को जीवन यापन करने का एक उचित ढंग प्रदान किया। इनके द्वारा प्रतिपादित नियम आज भी जीवन को एक दिशा देने का कार्य करते हैं।

मुख्य शब्दः समाज, साहित्य, निर्गुण-सगुण, संत, बिश्नोई सम्प्रदाय।

प्रस्तावना

भक्ति भारतीय संस्कृति का सदैव आभूषण रही है। भक्ति की यह पीयूषवर्षिणी धारा वेदों से निसृत होकर उपनिषदों, पुराणों, बुद्ध, जैन साहित्य से प्रवाहित हुई है और किसी-न-किसी रूप में आज भी प्रवाहित है। कभी तीव्र कभी मंद रूप से बहने वाली भक्तिधारा से मध्यकाल में एक महानद का रूप धारण कर लिया। भारतीय संस्कृति का मूल हमारे वेदों में मिलता है। वैदिक युग से प्रारम्भ होकर हिन्दी साहित्य के मध्यकाल (भक्तिकाल) तक भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित होती रही है। अष्टछाप के कवि ब्रह्म के सगुण रूप के उपासक थे तथा भक्तिकाल की दूसरी प्रमुख धारा निर्गुण का वर्णन प्रमुख संतों कबीर, दादू, गुरु नानक, गुरु जम्भेश्वर, रज्जब आदि ने करते हुए उस परब्रह्म की प्राप्ति के उपदेश दिए हैं। इन संतों ने अपने-अपने सम्प्रदाय स्थापित किए परन्तु सबका मूल प्रतिपाद्य उस निर्गुण-निराकार ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग दिखाना तथा लोगों को बाह्यडम्बरों तथा कुरीतियों से दूर करना भी था।

पद्रहवीं शताब्दी में मरूभूमि में भी एक विलक्षण विभूति का उद्भव हुआ जिनका नाम गुरु जम्भेश्वर अथवा जाम्भोजी था। गुरु जम्भेश्वर ने लोगों को सद्मार्ग पर लाने के लिए 29 नियमों की एक नियमावली तैयार की तथा एक नवीन पंथ 'बिश्नोई पंथ' की स्थापना की। गुरु जम्भेश्वर ने लोगों को कर्मकांडों से बाहर निकालते हुए उस परब्रह्म निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना करने की ओर उन्मुख किया।

'निर्गुण' शब्द का अर्थ

बृहत हिन्दी कोश: सत्, रज, तम तीनों गुणों से रहित परमात्मा, नित्य शुद्ध, बुद्ध मुक्त ब्रह्म।[1]

हिन्दू धर्म कोश: निर्गुण का अर्थ है गुणरहित। चरम सत्ता ब्रह्म के दो रूप है- निर्गुण और सगुण। उसके सगुण रूप से दृश्य जगत का विकास अथवा विवर्त्त होता है। किन्तु वास्तविक वस्तुसत्ता तो निर्गुण ही होती है। गुणों के सहारे से उसका निर्वचन नहीं हो सकता। सम्पूर्ण विश्व में अन्तर्यामी होते हुए भी वह तात्विक दृष्टि से अतिरेकी और निर्गुण ही रहता है।[2]

निर्गुण काव्य परम्परा: यदि हम निर्गुण काव्य परम्परा की बात करें तो यह परम्परा बहुत लम्बे समय से चली आ रही है। एक अदृश्य सत्ता जिसे हम ईश्वर, परमात्मा आदि नामों से पुकारते हैं, वह जो इस सृष्टि से पहले भी विद्यमान थी, वैदिक ग्रन्थों में भी इन देवताओं के इलावा एक अदृश्य सत्ता भी मानी गई है। चारों वेदों में अनेक मन्त्रों में इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं। उपनिषदों में वैदिक कर्मकांड तथा बहुदेववाद का विरोध करते हुए अध्यात्म ज्ञानियों ने केवल मात्र एक ब्रह्म की सत्ता'[3] स्वीकार की है। इस प्रकार उपनिषदों से चले निर्गुण परम्परा के बीज, शंकराचार्य के अद्वैतवाद रूप में अंकुरित होते हैं व रामानंद की शिष्य परम्परा के अंतर्गत निर्गुण का एक वट वृक्ष खड़ा दिखाई देता है। कबीर, रैदास, धन्ना जाट, गुरु नानक, दादू दयाल, गुरु जम्भेश्वर आदि संतों ने निर्गुण-निराकार परमात्मा की भक्ति करते हुए समाज को सद्मार्ग की ओर उन्मुख किया। इन निर्गुण उपासकों ने शील, संतोष, त्याग, बाह्य आडम्बरों का खंडन, गुरु का महत्त्व, भजन तथा नाम-

स्मरण, रहस्यवाद आदि विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं।

कबीर: निर्गुण काव्य धारा के प्रतिनिधि के रूप में प्रख्यात कबीर के व्यक्तित्व से कोई अनभिज्ञ नहीं है। इन्होंने ईश्वर के निराकार, सर्वव्यापक, अलख-अगोचर और वर्णातीत रूप को माना है। उनके राम दशरथ पुत्र राम न होकर घट-घट में बसने वाले राम है। वे कहते हैं -

"निरगुन राम निरगुन राम जपहु रे भाई
अविगति की गति लखी न जाई"।[4]

गुरु नानक देव: पथ विचलित जनता को निर्देशित करने के लिए इन्होनें देश-विदेश में भ्रमण किया और भटकते हुए मनुष्यों को भक्ति का उपदेश दिया। गुरु ग्रन्थ साहिब में गुरु नानक देव जी के 914 पद और श्लोक संकलित है। इनका वर्ण्य-विषय ब्रह्म, माया, नाम, गुरु, आत्मज्ञान, भक्ति, नश्वरता आदि हैं। गुरु नानक देव जी ने जाति-पाति, कर्मकांड और पारस्परिक इर्ष्या-द्वेष का खंडन किया है। प्रात:काल ईश्वर की स्तुति करने के लिए उन्होंने 'जपुजी' की रचना की है। उन्होंने ईश्वर को वैर रहित, निर्भय, कालातीत, अजन्मा, स्वतः प्रकाशित कहते हुए मूल मंत्र प्रदान किया है -

'ओ सति नामु करता पुरखु निरभऊ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि'[5]

दादू दयाल: निर्गुण धारा के अंतर्गत दादूदायल जी ने परमात्मा को सृष्टि के कण- कण में विद्यमान माना है। इन्होंने व्यर्थ की पूजा, उपवास, तीर्थ, भेदभाव को त्याग कर जीवन यापन करने का उपदेश दिया-

'आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार
निर्बनी सब जिवसों दादू यह मत सार'[6]

गुरु जम्भेश्वर: मध्यकाल में जहां उत्तर भारत में अनेक संत महापुरुष समाज को दिशा निर्देश दे रहे थे वही मरुभूमि में एक विभूति का जन्म हुआ, जिन्होनें लोगों को सद्मार्ग की ओर उन्मुख किया। 'गुरु जम्भेश्वर का जन्म सवंत 1508 में सोमवार के दिन जोधपुर राज्य के अंतर्गत नागौर नामक परगने पीपासर गाँव में हुआ। इनकी जाति पंवार वंशी राजपूतों की थी'।[7] साधारण लोगों को संकट आदि से निकलने के लिए गुरु जम्भेश्वर ने 'सवंत 1542 में राजस्थान के सम्भराथल'[8] नामक स्थान पर 'बिश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना की तथा 29 नियमों की एक आचार सहिंता तैयार की, इन नियमों की पालना करने वाला जन समूह बिश्नोई कहलाया। वे बहुत ही साधारण शब्दों में अपनी बात कहते, उन्होंने अपनी दिव्य आलौकिक 'सबदवाणी' के द्वारा इस महान कार्य को किया। 'सबदवाणी का मूल सन्देश आज भी उतना ही उपादेय, प्रभावक, मंगलकारी और मानव जीवन को ऊँचा उठाने में समर्थ है, जितना 16 वीं शताब्दी में था। मनुष्य को पशु सामान्य धरातल से उठाकर सही अर्थों में मनुष्य बनाना सबदवाणी का

मुख्य सन्देश है, जो आधुनिक परिवेश में भी पूर्णत सही और लोक कल्याणकारी है'

गुरु जम्भेश्वर पाँचवे सबद में निर्गुण निराकार परमात्मा की भक्ति करने के उपदेश देते हुए कहते हैं कि-

'जपा तो एक निरालंभ शिम्भू, जिहि के माई न पीऊ न तन रक्तुं न तन धातूं, न तन ताव न सीऊ'[9]

गुरु जी ने तत्कालीन समाज में व्याप्त बाह्यडम्बरों का खंडन किया है वे तीर्थ यात्रा एवम अनेक लोकाचारों का खंडन करते हुए कहते हैं-

'अड़सठ तीर्थ हिरदै भीतर, बाहर लोका चारू'[10]

गुरु जम्भेश्वर ने निर्गुण-निराकार परमात्मा की भक्ति करने का उपदेश दिया है। उन्होंने उस निर्गुण परब्रह्म के लिए 'विष्णु' शब्द का प्रयोग किया है। उनके अनेक सबदों में 'विष्णु' शब्द मिलता है -

'ओइम विष्णु - विष्णु तूं भण रे प्राणी, जो मन मांने रै भाई'[11]

अन्त निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ब्रह्म के निर्गुण-सगुण रूप की चर्चा प्राय हमारे ग्रन्थों में मिलता है। निर्गुण, निराकार, निरुपाधि आदि उपाधियों से समालंकृत परब्रह्म ज्ञान का विषय है। साधारण जन ईश्वर प्राप्ति हेतु सगुण रूप का आसरा लेता है परन्तु मनीषियों ने ईश्वर के निर्गुण रूप को ही मान्यता दी है। निर्गुण ब्रह्म की एक लम्बी परम्परा हमारे सामने आती है, उपनिषदों से लेकर शन्कराचार्य, नाथों, सिद्धों, महाराष्ट्रीय संतों तथा हिन्दी साहित्य के मध्यकाल तक निर्गुण-सगुण विवाद चलता रहा। मध्यकालीन संतों ने ईश्वर के निर्गुण रूप की उपासना पर बल देते हुए लोगों को तत्कालीन समाज में व्याप्त आडम्बरों का खंडन करते हुए ब्रह्म के निर्गुण रूप की ओर उन्मुख किया। इन्हीं संतों में गुरु जम्भेश्वर का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बृहत हिन्दी कोश, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-1296
2. राजबली पाण्डेय, हिन्दू धर्म कोश, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ संख्या-370
3. उधृत मनमोहन सहगल, गुरु ग्रन्थ साहिब एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, भाषा विभाग, पटियाला, पृष्ठ संख्या-231
4. कबीर ग्रन्थावली, (सम्पादित), प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, पृष्ठ संख्या-81
5. जोध सिंह, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,(मूल पाठ एवं हिंदी अनुवाद), सिख हेरिटेज पब्लिकेशन, पटियाला,
6. दादू दयाल की बानी, पृष्ठ संख्या-221
7. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, बी.आर. पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या-1
8. वही, पृष्ठ संख्या-237
9. कृष्णानंद आचार्य, जम्भसागर, जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, पृष्ठ संख्या-31
10. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, बी.आर. पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या-41
11. वही, पृष्ठ संख्या-205